ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-4* Issue-11* February- 2020
Anthology : The Research

कलियुग कल्पवृक्ष समदान : श्रुति स्मृति में वर्णित दान–वैशिष्टय

शालिनी साहनी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
आर.एम.पी.पी.जी. कालेज
सीतापुर (उ0प्र0), भारत

सारांश

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में कहा गया है कि सत्ययुग में धर्म अपनें चारों चरणों तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान से स्थित रहता है, किन्तु चारों चरणों में तप का प्राधान्य रहता है त्रेता में ज्ञान का प्राधान्य रहता है, द्वापर में यज्ञ की प्रधानता रहती है तथा कलियुग में महर्षियों ने दान को ही प्रधान कर्म कहा है– तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।। (मनु0 1/86)

आज के भौतिकवादी समय में जब स्वार्थपरायणता एवं मौद्रिक लिप्सा अपने चरम पर है, मानव के जीवन में प्रायः शान्ति का अभाव है। इस कलियुग में मानव योग, यज्ञ, तप, ज्ञान, ध्यानादि द्वारा अपने अभ्युदय की प्राप्ति नहीं कर सकता है। अनेक विषम परिस्थितियों के कारण यह सभी आज सम्भव भी नहीं हैं। परन्तु इस कलियुग में भी व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार दान के माध्यम से स्वयं का कल्याण कर सकता है।

दान के विविध रूप हो सकते हैं। दानशील होने के लिए मात्र धनी होना ही पर्याप्त नहीं है और न ही यह अनिवार्य है।

विद्यादान, श्रमदान, समयदान किसी महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य में योगदान आदि। दीन–दुखियों की सेवा–सुश्रुषा हो अथवा निर्धन परिवार के बालकों को विद्यादान, यह किसी भी रूप में किया जा सकता है। दानरूपी श्रेयपथ का वरण करके व्यक्ति आत्मकल्याण के साथ ही समाज एवं राष्ट्रहित में भी सहभागिता प्राप्त कर सकता है।

दान द्वारा मानव में पुनः त्याग की भावना विकसित हो सकती है। त्याग से लोभ कृपणता आदि दुष्प्रवृत्तियों का शमन होता है तत्पश्चात मानव परम शान्ति का अनुभव प्राप्त कर सकता है।

अतः इस कलिकाल में आवश्यकता है कि हम 'दान' के माहात्म्य को पुनः समझे एवं उसे अंगीकार करें। दान की आवश्यकता सतयुग, द्वापर अथवा त्रेतायुग की अपेक्षा आज कहीं अधिक है। इसकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता आज अधिक है क्योंकि लोग, कृपणता, वैर–वैमनस्य एवं अतिशय प्रतिस्पर्धा के इस युग में मानव मन कलुषित हो गये हैं जिनकी शुद्धि हेतु दान कलिमल शोधक सिद्ध हो सकता है। तथाहि–
तपः कृते प्रषंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।। (प0 पु0 18/437)

प्रस्तावना

भारतभूमि धन्य है, धन्य है वह संस्कृति जिसमें धन से अधिक धर्म को, भोग से अधिक योग को, स्वार्थ से अधिक परमार्थ को और धर्म के चारों पादों– सत्य, तप, दया एवं दान में दान को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। वेद, पुराण, स्मृतियाँ सभी दान की महिमा का प्रतिपादन समवेत स्वर में करती हैं।

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। प्रिया देयम्।
ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। (तैत्तिरीय0 शिक्षा0 11–अनु0)

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में कहा गया है कि सत्ययुग में धर्म अपने चारों चरणों तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान से स्थित रहता है, किन्तु चारों चारणों में तप का प्राधान्य रहता है त्रेता में ज्ञान का प्राधान्य रहता है, द्वापर में यज्ञ की प्रधानता रहती है तथा कलियुग में महर्षियों ने दान को ही प्रधान कर्म कहा है–

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।। (मनु0 1/86)

मनु का विचार है कि दान तभी सफल होता है जबकि उसे उचित देश–काल में योग्यपात्र में श्रद्धाभक्तिपूर्वक विधि–विधान से दिया जाय–

देशकालविधानेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्
पात्रे प्रदीयते यन्तु तद्धर्मस्य प्रसाधनम्। (मनु0 7/86/8)

विद्या एवं तप से युक्त ब्राहमण को श्रद्धापूर्वक थोड़ा या बहुत जितना भी दिया जाय वह परलोक में उसे प्राप्त होता है–

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धधानतयैवन्य।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य फलमश्नुते।।(मनु0 7/86)

महर्षि वेदव्यास के अनुसार –

यद्दाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने।
तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति।।(व्यासस्मृति–4/16)

अर्थात् दान में जो कुछ देता है और जितने धन का वह स्वयं उपभोग करता है, उतना ही उस धनी व्यक्ति का अपना धन है अन्यथा मृत्यु के उपरान्त उस व्यक्ति के धन से दूसरे लोग आनन्द मनाते हैं।

यद्दाति यदश्नाति तदैव धनिनो धनाम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि।।(व्यासस्मृति–4/17)

सवधानीपूर्वक अपनी धन–सम्पत्ति को दान आदि सत्कर्मो में व्यय करना चाहिये। धन के द्वारा दान आदि करके धर्म की वृद्धि का उपक्रम करना चाहिये, निरन्तर धन बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होता है, धर्म बढ़ेगा तो धन स्वतः आने लगेगा। **"धर्मोदर्थो भवेदध्रुवम्"**

महर्षि वेदव्यासानुसार शरीरधारियों के सभी शरीर नश्वर हैं और धन भी सदा साथ रहने वाला नहीं है, साथ ही मृत्यु भी निकट ही सिर पर बैठी है। अतः प्रतिक्षण धर्म का संग्रह करना चाहिए–

आशाश्वतानि गात्राणि विभवोनैवशाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः।।(व्यासस्मृति 4/19)

जिस व्यक्ति के जीने से ब्राहमण, साधु–सन्त, मित्र, बन्धु–बान्धव आदि सभी जीते हैं– जीवन धारण करते हैं, उसी व्यक्ति का जीवन सार्थक है– सफल है– स्वयं के लिए कौन नहीं जीता है– पशु–पक्षी आदि क्षुद्र प्राणी भी जीवित रहते हैं परन्तु उनका जीवन प्रशंसनीय नहीं है। परलोक के लिए जो दान–धर्मपूर्वक जिया गया जीवन है, वही सच्चा जीवन है।

स्वयं के भोजन के ग्रास में से आधा या चतुर्थ भाग आवश्यकता वालों अथवा माँगने वालो को दे देना चाहिये–

ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं नदीयते।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति।।(व्यासस्मृति 4/23)

जो धन पवित्र एवं सत्पात्र को दिया जाता है तथा जो प्रज्वलित अग्नि में होम किया जाता है, उतना ही धन वास्तविक रूप में धन कहा गया है, शेष धन तो निरर्थक ही है।

ब्राहमणेषु च यद्दतं यच्च वैष्वानरे हुतम्।
तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम्।।(व्यासस्मृति 4/39)

अच्छे उपजाऊ क्षेत्र में ही अन्न के बीज डालने चाहिये और धन का दान भी सत्पात्र गुणवान को देना चाहिये।

ब्रहमपुराण में अन्नदान की महिमा व्यास जी इस प्रकार से कहते हैं–

अन्नस्य हि प्रदानेन नरोयाति परां गतिम्।
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यष्नुते सुखम्।।
(ब्रहम पु0– 218/26–27)

शिवपुराण में व्यास जी कहते हैं कि धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है, अर्थ से भोग सुलभ होता है, फिर उस भोग से वैराग्य की सम्भावना होती है।

सतयुग में तप को प्रशस्त कहा गया है, किन्तु कलियुग में द्रव्यसाध्य धर्म–दान को श्रेष्ठ कहा गया है। न्यायोपार्जित धन का दान करने से दाता को ज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है।

समस्त पुराणों में अन्नदान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है–

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्।
सद्यः प्रीतिकर ह्रद्य बलबुद्धि विवर्धनम्।
अन्नेन सदृषं दानं न भूतं न भविष्यति।।
(शि0 पु0– 11/17/29)

वाराहपुराण में भी अन्नदान की विशेष महिमा बतायी गयी है। राजा श्वेत के आख्यान में महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा है कि हे राजन् अन्न सभी समयों में सुख देने वाला है। अतः तुम सदा अन्नदान दिया करो। किन्तु राजा श्वेत ने अन्नदान को तुच्छ मानकर वैसा न किया। वरन् अनेक नगरों का दान किया। कालान्तर में परलोक में उन्हें भूख और प्यास सताने लगी भूखे राजा श्वेत अपनी ही हड्डियों को चाटकर भूख–प्यास बुझाने लगे तब राजा श्वेत के पास महर्षि वशिष्ठ आये और उन्होंने स्मरण कराया कि पूर्वजन्म में तुमने अन्न–जल का दान नहीं किया उसी का यह परिणाम है।

शिवपुराण में अन्न दान को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है–

नान्नदानसमं दानं विद्यते मुनिसत्तम, अन्नाद भवन्ति भूतानि तदभावे म्रियन्ति च
अन्नमेव प्रशंसन्ति सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् अन्नेव सदृषं दानमं न भूतं न भविष्यति।
(शिवपुराण– 11/18/24–25)

आज के भौतिकतावादी समय में जब स्वार्थपरायणता एवं मौद्रिक लिप्सा अपने चरम पर है। मानव के जीवन में प्रायः शान्ति का अभाव सा जान पड़ता है। इस कलियुग में मानव योग, यज्ञ, तप, ज्ञान, ध्यानादि द्वारा अपने अभ्युदय की प्राप्ति नहीं कर सकता है। अनेक विषम परिस्थितियों के कारण यह सभी आज सम्भव भी नहीं है परन्तु इस कलिकाल में भी व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार दान के माध्यम से स्वयं का कल्याण कर सकता है।

दानशील होने के लिए मात्र धनी होना ही पर्याप्त नहीं है न ही यह अनिवार्य है। दान के विविध रूप हो सकते हैं, विद्यादान, श्रमदान, समयदान, किसी महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य में योगदान आदि। दीन–दुखियों की सेवा–सुश्रुषा हो अथवा निर्धन परिवार के बालकों को विद्यादान यह किसी भी रूप में किया जा सकता है। किसी सामाजिक समस्या के निदान हेतु कार्य करने वाली संस्था से जुड़कर समयदान करने एवं उसमें सुरूचिपूर्ण योगदान

देकर समाज एवं राष्ट्र के नवनिर्माण में सहयोग करना भी दान का ही एक रूप है।

अस्तु कलियुग में दान का स्वरूप कुछ भी हो सकता है। दानरूपी श्रेयपथ का वरण करके व्यक्ति आत्मकल्याण के साथ ही समाज एवं राष्ट्र हित में भी सहभागिता प्राप्त कर सकता है।

दान द्वारा मानव में पुनः त्याग की भावना विकसित हो सकती है। त्याग से लोभ, कृपणता आदि दुष्प्रवृत्तियों का शमन होता है। तत्पष्चात मानव परम शान्ति का अनुभव प्राप्त कर सकता है।

अतः इस कलिकाल में आवश्यकता है कि हम 'दान' के माहात्म्य को पुनः समझें एवं उसे अंगीकर करें। दान की आवश्यकता सतयुग, द्वापर अथवा त्रेतायुग की अपेक्षा आज कहीं अधिक है। इसकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता आज अधिक है क्योंकि लोभ, कृपणता, वैर–वैमनस्य, अतिशय प्रतिस्पर्धा इस युग में मानव–मन कलुषित हो गये हैं जिनकी शुद्धि हेतु दान कलिमल शोधक सिद्ध हो सकता है।

तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।

सन्दर्भ

1. मनु0 1/86
2. प0 पु0 18/437
3. तैत्तिरीय0 शिक्षा0 11–अनु0
4. मनु0 1/86
5. मनु0 7/86/8
6. व्यासस्मृति 4/19
7. व्यासस्मृति 4/23)
8. व्यासस्मृति 4/39
9. ब्रहम पु0– 218/26–27
10. शि0 पु0– 11/17/29
11. शिवपुराण– 11/18/24–25